साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत राजस्थानी कविता-संकलन

लीलटाँस

कन्हैया लाल सेठिया

H
817.51
Se 75 L

साहित्य

H
817·51
Se75L

लीलटाँस

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं । नीचे बैठा लिपिक इसका विवरण लिख रहा है । भारत में लेखन-कला का यह सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख ।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली।

साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत राजस्थानी कविता-संकलन

लीलटाँस

मूल राजस्थानी

कन्हैयालाल सेठिया

हिन्दी अनुवाद

गुलाब भाटी

साहित्य अकादेमी

Leeltaans: Hindi translation by Gulab Bhati of Kanhaiyalal Sethia's Akademi Award-winning Collection of poems *Leeltaans* in Rajasthani-Sahitya Akademi, New Delhi (1996), Rs. 45

© साहित्य अकादेमी

Library IIAS, Shimla
H 817.51 Se 75 L
00116019

प्रथम संस्करण : 1996

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह मार्ग,
नयी दिल्ली 110 001

बिक्री कार्यालय

'स्वाति', मन्दिर मार्ग,
नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवन तारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल,
23ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर मार्ग,
कलकत्ता 700 053

172, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग
दादर, बम्बई 400 014

गुना बिल्डिंग, दूसरी मंजिल
304-305, अन्ना सालई, तेनामपेट,
मद्रास 600 018

ए डी ए रंगमन्दिर,
109, जे.सी. मार्ग,
बंगलौर 560 002

ISBN : 81-7201-753-7

मूल्य : पैंतालीस रुपये

लेजरटाइपसेटिंग : पण्डित प्रिंटर्स, रामनगर, शाहदरा दिल्ली-32

मुद्रक : आकाशदीप प्रिंटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली 110 002

Indian Institute of Advanced Study SHIMLA
116019
17/11/04
H
817.51
Se75L

कविता क्रम

मादा	९
पहिचान	१०
भेदिया	११
बेढंगा	१२
सच और झूठ	१३
सच	१४
सच और सपना	१५
मणिधर साँप	१६
दीठ और अदीठ	१७
नज़र	१८
निराकार	१९
ईश्वर	२०
सगुण-निर्गुण	२१
राग और नाद	२२
स्थितप्रज्ञ	२३
सापेक्ष	२४
निरपेक्ष	२५
छूट	२६
नियमानुसार	२७

डर	२८
त्याग और भोग	२६
स्वर्ग-नर्क	३०
सरीखा मुरका	३१
ज़िन्दगी की आँच	३२
अंतर	३३
आस्था	३४
दुख	३५
कर्म ही पहचान	३६
चुग़लख़ोर दीया	३७
थोथा बड़प्पन	३८
अजगर की लीक	३६
तूंतड़े ही बो	४०
पश्चिम और पूरब	४१
रत्नाकर	४२
रत्नदीप	४३
युग भीष्म	४४
छेह और नेह	४६
पहचान	४७
बड़ा डर	४८
एक दीठ : दो सच	४६
कविता	५०
जन्मभूमि	५१
साकार पीड़	५२
गाँव	५३
शहर–१	५५
शहर–२	५६

जय-यात्रा	५७
सौ पाँवों वाली होनहार	५८
आँधी	६०
धरती का केन्द्र	६२
मंज़िल की पुकार	६४
नये अनाज की खुशबू	६५
सृजनधर्मी	६६
वसंत	६८
ग्रीष्मऋतु	७०
शिशिर	७२
चौमासा	७४
दिन	७५
भभूत	७६
जन्मदिन	७७
गीतों का दीठ	७८
अनहद का अमृत	८०
चेत	८१
साँझ	८३
खेल	८५
राम-नाम	८६
दुपहरी	८७
निर्लज्ज द्वंद्व	८८

मादा

अल्ल सवेरे
फँरास पर बैठी लील टाँस
अचानक ही उड़ गयी
आकाश की अनंत नीलिमा में
जाग उठी कोई याद
कोई सपना,
ऊँची-ही-ऊँची
उड़ती गयी
पीछे छूट गया घोंसला
मोबी[१] बच्चे।

अब वह
माँ नहीं
केवल मादा है।

---

१. प्रथम प्रसव के बच्चे

पहिचान

जब से हुई सयानी
दीठ की छोरी पहिचान
फिरते हैं डरे-डरे-से
आज तक साथ खेले हुए
बेचारे लँगोटिया यार 'अर्थ'।
सफ़ेद-सफ़ेद सारा ही–
दूध था पहले
अब नये प्रेमी मन के–
सिखाये-सिखाये बावरी
काँच के टुकड़ों में ही
ढूँढ़ने लगी है
चूड़ियाँ और हीरे,
झूठ के माप की ख़ातिर
फाड़ कर फेंक दिये
सच के चिथड़े-चिथड़े,
जाई के कुलच्छन देखकर
बहुत ही जलता है
दीठ का पेट
कुपथ पर बढ़ गये छोकरी के पाँव
अब क्या होगा ?

भेदिया

मुझे पता है
तू इसी जंगल का भेदिया है,
तेरे पाँवों से लगी है
नाहर की गुफा
अजगर की खोह
मीठे पानी का पोखर और
आम जामुन के गाछ
पर मत दिखा
अपनी जानकारी
चारों तरफ़ दौड़-दौड़ कर
भटक जायेगा नये बटोही
मुड़े हुए देखकर
सारी दिशाओं में पदचिह्न,
तू तो चल चलकर
उसी मार्ग को चौड़ा कर
जो जाता हो
इसी घनघोर जंगल से बाहर।

बेढंगा

देख रहे हो
जिस भले चेहरे को आप
वह मेरा नहीं है
यदि चला जाऊँ
इस चेहरे से घर
तो मेरी लुगाई और पड़ोसी
समझेंगे
कोई बेढंगा है।

सच और झूठ

चक्की का
निचला पाट
सच,
ऊपर का पाट
झूठ,
सच की छाती में कील
झूठ की
पीठ में मूठ !

सच

सच
साझे का धन
सियार खायें
स्वप्न
आँख का तारा
मालिकों को लड़ाये।

सच और सपना

आँखों के आगे
केलों के बाग़
नारियलों के वन
नीला समुद्र
सुनहरी मछलियाँ
सुंदर सीपें
दूधिया शंख,

दीठ में उगे हुए
केर[१] और खेजड़े[२]
बबूल और रोहीड़े[३]
मयूर और टीले
उजाड़ निर्जन,

कैसा सच
कैसा सपना !

१+२+ ३ एक प्रकार के वृक्ष

मणिधर साँप

मन,
मणिधर साँप
रखता है अर्धरात्रि में
मणि को दूर,
करता है वह उसके प्रकाश में
चुग्गा-पानी,
सो जाती है उसी क्षण
मेरी चेतना
रह जाता है
हाथ में ही
ज्ञान का गोबर
जागूँ और पछताऊँ
फिर कहाँ वह मणि ?

दीठ और अदीठ

आदमी के
पीछे
अदीठ भीड़
आत्मा के
पीछे
अदीठ परमात्मा
दीठ में आयेंगे
तब कोई करेगा
लड़ाई या प्रेम ।

नज़र

वृक्ष से
निकलेंगे
कहाँ काँटा और कली
कोंपल और कली
यह कुदरत ही जाने,
मैं मिट्टी हूँ
मेरी नज़र तो
बीज पहचाने।

निराकार

प्रत्यक्ष को
क्या
प्रमाण की दरकार ?
प्याज के
छिलके उतार
आकार में
निराकार।

ईश्वर

किसने देखा
ईश्वर ?
इस सवाल का जवाब है
यह पोखर
जिसने नहीं देखा समंदर ।

सगुण-निर्गुण

मैं कहाँ बजाता हूँ
मुझे बजाता है
यह सितार,
बँधी हुई है इसकी झंकार से
मेरी चेतना
जैसे दीये की बत्ती से लौ,
छूकर इसके तार
पकड़ लेती हैं गति अंधी उँगलियाँ
सुनकर इसकी धुन
सगुण बन जाता है निर्गुण।

Indian Institute of Advance
116019
17/11/04

राग और नाद

बाँसुरी में पाँच
और शंख में एक छेद,
इतना ही है राग और
नाद में भेद,
एक प्रत्यक्ष गीता
साम्प्रत वेद।

स्थितप्रज्ञ

कितने ही
रूप और यौवन
आते हैं सम्मुख
पर दर्पण
नहीं मिलाता मन
दीठ के साथ।

सापेक्ष

टूट गया
सात तारों में से
एक तार,
सितार बन गयी ईंधन
समाप्त हुआ
पाँच तत्त्व में से
एक तत्त्व
सत्य हो गया व्यर्थ।

निरपेक्ष

लगाकर दीए के
पलीते
क्लांत सूरज
निश्चिंत होकर
आकाश के महल में
निर्भय सो रहा है।

छूट

मेरी बाखल में है
लाल, सफ़ेद, पीले कनेर
एक-सी मिट्टी और गगन
पत्तों और डालियों में
कहाँ से आये
ये तरह-तरह के रंग ?
इनकी चेतना को
किसने दी यह छूट ?
जिसने किया इस सत्य को
अपनी दीठ के खातिर अनुभूत !

नियमानुसार

चोर के हाथ
सच्चे
पर पाँव कच्चे,
कुछ-न-कुछ क़सर
रखती है कुदरत नियमानुसार
नहीं तो कभी का
बिखर जाता
भानुमती का पिटारा!

डर

पड़ी हाथी पर
चींटी की नज़र
देखकर चलता-फिरता पर्वत
घुस गयी बिल में डरकर !

पड़ी चींटी पर
हाथी की नज़र
प्रत्यक्ष मौत आती हुई देखकर
कर ली सूँड ऊपर !

त्याग और भोग

चोटी पर
पहुँचा फूल
महक बाँटकर
झर गया
आकर बैठा कौआ
भक्ष्य देखकर उड़ गया !

स्वर्ग-नर्क

कूड़े का ढेर
फूल के लिए नर्क
बीज के लिए स्वर्ग !

सरीखा मुरका[1]

ज़िन्दगी और मौत
हमउम्र हैं
सरीखा मुरका
दोनों का भर्तार जीव
रखता है दुराव
एक को सुहाग
दूजी को दुहाग,
पर बुझते ही ज्योति
साथ होगी सती
वियोगिन मौत !

१. बड़ा हाथी, जिसके दाँत बड़े-बड़े और सुंदर होते हैं।

ज़िन्दगी की आँच

ज़िन्दगी की
आँच में सेंकती है
भूखी मौत
अपनी रोटी,
मंद होकर
फिर साँसों से सुलगाकर
कर लेती है ज्वलित,
शायद हैं अभी
रोटी के किनारे कच्चे !

अंतर

मंज़िल पर
पहुँचने से पहले
टूट गयी कच्ची लहर
क्षणभर अनमनी होकर
मेढकी ने छलाँग भर
पकड़ ली लपककर
नयी लहर की उँगुली
आया जी में यह देखकर
यदि ज़िन्दगी पाँव थाम ले
तो क्या पड़ेगा अंतर
मौत में और उसमें !

आस्था

दीपक,
न चढ़ते सूरज को देखता है
न ढलते को,
बीज,
न उगते गाछ को देखता है
न फलते-फूलते को
पर
उनकी आस्था है
जलने और गलने में !

दुख

दुख,
सिंहनी का दूध
इसे चाहिए
सोने की हाँडी
तिड़क जाती है कच्ची काया
यह पारा
निकल जाता है
ढलक-ढलक कर
आँसुओं में !

कर्म ही पहचान

आदमी का क्या
सुलझा हुआ या उलझा हुआ
वक़्त से है उसकी पहचान,

रूप का क्या
सुन्दर या कुरूप
सच है उसकी पहचान,

उम्र का क्या
लम्बी या छोटी
कर्म से ही है पहचान !

चुग़लख़ोर दीया

कानों के कच्चे
सूरज ने
कर डाली
तारों के बाप
अँधेरे की हत्या,
किंतु पराये सुख दुबला
चुग़लख़ोर दीया
कितनी देर जिया !

थोथा बड़प्पन

हुई
न हुई
ऊँट की थुई[1]
थोथा बड़प्पन,
अपनी जगह पर
बेचारी ईडरी[2]
बैठने में दूभर !

---

१. ऊँट की कूबड़
२. ऊँट के वक्षस्थल का स्थान विशेष जहाँ की चमड़ी खुरदरी एवं लगातार बैठने पर भूमि से रगड़ खाते-खाते संवेदना-शून्य हो जाती है।

अजगर की लीक

यह मांर्ग नहीं
विशाल अजगर की लीक है
लौट आ
तू बच्चा है अभी
आँखों का जंजाल
बैठा है बाँबी में काल
भक्ष्य के इंतज़ार में
सुन चेतन की पुकार
उतावले बटोही
यह मार्ग नहीं है !

तूंतड़े ही बो

दाने न सही
तूंतड़े ही बो
उगे चाहे न उगे
ज़मीन तो दबा,

कला न सही
गुलाचें ही खा
पाँचवें सवार की
गिनती में तो आ !

पश्चिम और पूरब

लड़ाई कुदरत से
सभ्यता पश्चिम की,
अहिंसा की संस्कृति
पूरब की,
सूरज जहाँ निर्मल
चाहिए उनको
आँखों का उजास,
जहाँ प्रबल
उन्हें आत्मा का प्रकाश,
पश्चिम का जीवन
निरंतर भागने की एक होड़,
पूरब की
संयम से सोचने का एक मोड़,
इस अन्तर से
'पश्चिम में जन्मते हैं युद्ध
पूरब में बुद्ध !

रत्नाकर

रखे कलेजे में आग
ऐसा कहाँ
तालाब का जिगर ?
यह तो समुद्र की ही क्षमता है
जो रोकता है सुलगता बड़वानल
क्या मजाल
कि आ जाये चेहरे पर शिकन
मिट जाये
भीतर-ही-भीतर भोभर,[१]
वे ही अंगारे
बनते हैं मोती और हीरे
नहीं तो, कौन कहता
सिर्फ़ नमक को रत्नाकर !

---

१. छोटे-छोटे अंगारे युक्त आग

रत्नदीप

भले ही दो
लगातार फूँकें
डालो ढेर सारी धूल
न कजलाए और बुझे
ये रत्नदीप,
जो करना ही चाहो
अदीठ
इनकी ज्योति
मींच लो दीठ
फिर खेलो, खुलकर
नहीं दिखेगी
तुम्हें अपनी छाया भी !

युग भीष्म

चंदन के वन में
सैर करके
मुड़ गया वापस
उत्तर की तरफ़
सूरज का रथ,
कुचल गया
घोड़े की टापों से
हिमालय का गर्व,
ढलने लगी काया
बिलकुल पतली नदियों की,
जन्म लेने लगीं
वक़्त के घरों में
लम्बे दिन और छोटी रातें,
निकल गये बाहर
धरती की क़ैद तोड़कर
बाग़ी बीज़,
सँभाल लिया सिर
पाँवों तले कुचली दूब ने,
दर्द और अभावों की

सेज पर सोया हुआ
युग का भीष्म
प्रतीक्षा कर रहा था
इसी घड़ी का
अब स्वेच्छा से छोड़ेगा
अपनी देह !

छेह और नेह

फूट गया घड़ा
बुझ गया दीया
तत्क्षण चले गये
जल और अग्नि,

झर गया फूल
टूट गया सपना
छोड़कर नहीं गये
महक और मन !

पहचान

इन्हीं
क्षणों में है
कालजयी क्षण
दीठ चाहिए,

इन्हीं
शब्दों में है
परमशब्द
परख चाहिए,

इन्हीं
सुरों में है
अनहद नाद
पहचान चाहिए !

बड़ा डर

जंगल में फिरते हैं भेड़िए
आकाश में मँडराते हैं बाज
रास्तों पर रेंगते हैं वासुकि नाग
पर सबसे बड़ा डर है भूख,
जो बैठने नहीं देती
भेड़ को बाड़े में
कबूतर को घोंसले में
पाँव को घर में !

एक दीठ : दो सच

एक वक़्त
नमक न सही
नहीं तुड़वायेंगे रुपया
सुबह या शाम
बिक जायेगी मूँज
तब मिल जायेंगे
खुले पैसे !

रुपया
हाथ का मैल
करो खुदरा
लक्ष्मी किसके यहाँ बैठती है
पीढ़ा डालकर
फिर किसका डर
ख़र्च के भाग बड़े !

कविता

भाषा की क्षमता को
तोलने की
तराजू है कविता,
शब्दों के गट्ठर में
चंदन की
लकड़ी है कविता,

सच है सौ टंच
नयी है
न पुरानी है कविता,
आदमी के हृदय में
सुलगते अंगारों की
निशानी है कविता,

गुड़ है गूँगे का
उठा-पटक का
अखाड़ा नहीं है कविता,
औषधि है आत्मा की
मिट्टी की काया का
भाड़ा नहीं है कविता ?

जन्मभूमि

नहीं है मेरी
सीमाओं पर हिमालय,
आँगन में गंगा और जमुना
वनों में चंदन और देवदार
बग़ीचों में काजू और केवड़ा,

मेरी सीमा पर है
वीरों की पुतलियाँ,
खून से तर आँगन
केसरिया बाना पहने हुए रोहीड़े
जौहर के साक्षी फोग[1] और खेजड़े[2]!

---

१. एक तरह का झाड़
२. एक वृक्ष

साकार पीड़

जंगल की छाती पर
फोड़े-सी ढाणी[1]
घरवाली का जीर्ण-शीर्ण वसन
कसूमल ओढ़नी
फोड़े की ललाई,
घरवाले का लीर-लीर
पीप-सा सफ़ेद साफा,
मक्खियों की तरह भिनकते
भूखे कुरूप काले बच्चे,
एक साकार पीड़
जिसमें टीस तो चलती है
पर अभी मुँह बंद है !

---

१. एक तरह का झोपड़ा

गाँव

इस कानी कमेड़ी का घोंसला
जाटों वाले पीपल पर है,
यह गंजी कागली
पगडंडी वाले नीम पर ब्याई है,
यह झींपरिया कुत्ता
रंगरेजों की ढाणी का है,
हीरू कुम्हार की बेड़की[1]
कल बछिया लायी है
बच्चों के लिए दूध हो गया,
रात मोती चमार के घर
जागरण था
अच्छी तीमारदारी की,
ये पदचिह्न तो मानदास जी के हैं
सुबह जल्दी ही किधर निकल गये ?
छोकरो ! भूत वाले खेजड़े के खोखे
अच्छे नहीं हैं
मत खाना, उल्टी करते फिरोगे,
सोहन माली की सांडनी

१. प्रथम बार ब्याने वाली गाय

हाल ही में बिराईजकर[1] मर गयी
ग़रीब को मार गयी,
पहचान और संवेदना का नाम है गाँव
जहाँ आत्मा ही परमात्मा है !

---

१. जहरीला पानी पीकर

शहर–१

शहर,
एक घायल एकांत
जिसका अदीठ फलसा और बाड़
मिलकर घुस गये भीतर
हल्ले-गुल्ले का मजबूत साँड़
सींगों में उलझ गया आकाश
गोबर से पैदा हुई भूमि
खुरों के नीचे कुचल गयी ज़िन्दगी
शहर,
एक लहूलुहान सूनापन !

शहर–२

शहर,
कुँवारे एकांत के साथ
किया हुआ बलात्कार
रह गया अनचाहा पेट
जनम गयी दोगली सभ्यता
कौन पकड़े इस कुलनाशी का हाथ
दासी बनकर बेचारी
कर रही है अपने दिन पूरे !

जय-यात्रा

बढ़ रहा है
आदि से ही अँधेरा
प्रकाश के पदचिह्नों को दबाता हुआ
पर पौ फटते ही
बँध जाते हैं
बेचारे के पगों में पहाड़,
विचलित होकर
करता है
दो चार ऊँघते तारों से रार
बहते हैं लहू के रेले
रँगी जा रही है पूरबी द्वार की देहरी
इन नन्हीं जोतों के
बलिदान से अनजान
महान सूरज
रोज़ शुरू करता है
अपनी जय-यात्रा !

सौ पाँवों वाली होनहार

पर्याप्त मेह
एकदम हरी
सिट्टों से लदी बाजरी
हरे-भरे सुकोमल पत्ते
मोठ का गुमान
कमर तक इठलाता ग्वार
बेलों पर बेशुमार काचरे[१]
नहीं कातरा, नहीं टिड्डी
राम की मेहर
हरियाली छायी है
फसल सवाई है
किसान के नैनों में सपने
मन में है शांति
पर कुदरत की नीयत में खोट
क्षण भर में पलट गया बैरी पवन
चली बैरिन नागौरी हवाएँ[२]
शीत-लहर सनन सनन

---

१. एक तरह की ककड़ी
२. उत्तरी हवाएँ

पेंदे बैठ गयी नमी
सूख गयी खेती
पड़ गया अचीता अकाल,
मनुष्य, बरसाता है नकली बारिश
पर कहाँ नकली पवन
दो पगों की काया
मार दर मार, होनहार
और सौ पाँवों की माया !

आँधी

दिन और रात
चला आँधी का रेला
हो गयी धरती
फिर से कुँआरी
भर गये ऊपरे[1]
बरबाद सारे खेत
भागते फिर रहे हैं
टीले और टीबे
चढ़ गयी गर्द
हो गयी धुँधली
सूरज की आँख
उतरा गर्द का गुबार
रिमझिम रेत की बरसात
रुँध गए रास्तों के कण्ठ
बँध गई ओकलियाँ
उड़ गये घोंसले
मच गया कोहराम

---

१. हल रेखाएँ

कमेड़ियों[१] और चिड़ियों का
काँप रहे हैं थर-थर
पौधे और झाड़
पछाड़ पर पछाड़
डगमगाये पाँव
बरगद और पीपल के
औंधे गिर पड़े पसर कर
गल गया गुमान
पड़ गयी सर में धूल
चुक गये सारे पुण्य
पर थमते ही
पवन का वेग
उमड़ी काली घटा
गाने लगे मोर
बोलने लगी टिटहरियाँ
जाग गये धरती के
तंबूरे के सातों सुर
बिसर गये सारे दुख
उजागर हुआ सच
सृजन की असह्य पीड़
और माँ की वेदना !

---

१. पंडुक पक्षी, फाख़ता

धरती का केन्द्र

बहुतेरे हैं
बताने वाले
लाठी रोपकर
धरती का केन्द्र,
बहुतेरे हैं
उठाने वाले
राग में राग मिलाकर
झूठा गंगाजल,
उनको पता है
भीड़ के होती है जीभ
और फक़त कान
आँखों के अंधे
उठाते हैं थोक में झूठ
उनको न तराजू चाहिये न बाट
चाहे बनिया हो या जाट
सब करते हैं
चमत्कार को नमस्कार,
मिलता नहीं है कोई
सच का ख़रीददार

कभी कभार आये
तो माँगेगा
तोला या माशा
किसको है चीज़ की दरकार,
चाहिए केवल तमाशा !

मंज़िल की पुकार

गलियाँ
गलियारों से ही निकलती हैं
जब वे इनकार करते हैं
ज़िन्दा मक्खी निगलते हैं
तब नहीं चल सकता
यह सरासर झूठ,
कोई ढाणी
और कोई पोखर
कोई झाड़
और कोई झंखाड़
कोई खेत और
कोई खलिहान
भटक-भटकाकर
झख मारकर
ढलते सूरज
वापस पकड़ लेंगे मारग
कब तक करेंगे
सुनी-अनसुनी
मंज़िल की पुकार !

नये अनाज की ख़ुशबू

मत कर
समय का अनादर
यदि वह फिर पलट गया
तो करके छोड़ेगा
इज़्ज़त की कौड़ियाँ,
कहना मान
उफन हवा का रुख़ देखकर
तभी होंगे अलग
फूस और दाने
नहीं तो पड़ा रह भले ही
खलिहान में डेरा डाले
दुत्कार भले ही
ढेरी पर हगते कुत्तों को
भूख लगते ही लपककर आ जायेगा
रास्ते पर
तेरा गुमराह मन
ले ! यहाँ तक आ रही है
पड़ोसी के झोंपड़े से
खदबदाते नये धान की ख़ुशबू !

सृजनधर्मी

पड़ गया अकाल
भूख की बुआ का त्रिताल
सफ़ेद झक्क आकाश की आँख
भूमि का मुँह उदास
भयभीत पानी
जा पहुँचा पाताल
भाग छूटी मऊ[1]
रँभाते ढोर हुए तितर-बितर
रात में मयूरों की चीत्कार
खड़े सूख रहे हैं
कुँआरे हाथों से
दूध पिये पीपल
कहाँ जायें ये पंगु बेचारे
इनके ही संगी-साथी
गाँव की सीमा के देव
होनी की मार
दीवार के लेव[2]
संकीर्णता और चमत्कार

---

१. अकाल के समय मालवा की तरफ़ जाते लोगों की कतार।
२. पलस्तर की पपड़ी

भरे पेट की गुहार
पड़ गया अचीता संकट
इसे ही लिख मारो और छपाओ
गाओ सूखी संवेदना के गीत
यही है आज के बड़बोले
सृजनधर्मियों की प्रीत !
खेलते हैं निठल्ले
शब्दों का खेल
भर पेट खाते हैं
सुबह और शाम
फिर पूरे तटस्थ, वीतराग
अब कहाँ वैसे कलाकार !
जो करते थे
कुदरत से अरदास
मिलाते थे हृदय के तार
झरती थी नैनों से धार
उठती थी कण्ठों से
मेघ-मल्हार
बन जाता था दातार
मूजी इन्द्र अवतार
खुल जाती थी
बरसात की नाली
और
वही कला
अब तो
प्रह्लाद का अग्नि-स्नान
गाँव की होली !

वसंत

मांडता है
रँगीला चैत
वनराजी की हथेलियों पर मेंहदी,
लेता है
महक से सराबोर पवन
चारों ओर घूमर,
शुरू हुआ है
जंगल के आँगन में
सुहाना महोत्सव,
आरम्भ करती हैं
गीतांगना चिड़ियाँ
सुमधुर मंद स्वरों में गीत,
नाचती हैं
सूर्य की सुनहरी किरणों में
पीपल की
ताम्रवर्णी कोंपलें,
लटकते हैं
जाल वृक्ष पर

गुलाबी मोतियों से पीलू[1],
गुनगुनाते हैं
उनींदी कलियों के कानों में
पिपासित भौरे,
उड़ते हैं
हरियल तोते
लिए रतनारी चोंचों में
दाड़िम के मानिक दाने,
भरते हैं
चंचल मृग चौकड़ियाँ
मुँह में कच्ची दूब दबाये,
टेरते हैं
रुपहली रातों में
अलगोजे मूमल का गीत,
सुनकर बिलखती है धरती
निसाँस लेता है गिरनार !

---

१. एक फल

ग्रीष्मऋतु

समझकर
आकाश के चिर मौन को
निर्बलता
चढ़ गया सिर पर
आक्रांत सूरज,
सुनकर
सूने जंगल में
अपनी बोली का प्रत्युत्तर
किलकारी मारता है निरंतर
भोला तीतर,
झकोलती है
लू की आतुर लपटें
मोर की लम्बी पाँखें,
कुतरती हैं
प्यासी गिलहरियाँ
गाछों की कच्ची कोंपलें,
रगड़ते हैं
भक्ष्य को भरमाने के लिए
आपस में चोंचें

नीम पर बैठे
शरारती कव्वे,
उठता है
भूमि के अंतस् को
मथ-मथ कर बारम्बार
ऊँचा पवन वर्तुल,
करती है
इस प्रकार
निर्जन उजाड़ में
बैठी ग्रीष्मऋतु
अपने दिन पूरे !

शिशिर

चमेली के
नन्हें फूलों-सा
लजीला सकुचाया
सर्दी का दिन,
सूरज का उगते ही करता है
छिपने क़ा मन
गोधूलि के साथ ही
छा गया सन्नाटा
बरसने लगा
बर्फ़-सा अँधियारा
जाग उठे अलाव
सो गये पनघट
सबद के नाम पर
गाँव में घुसते रेवड़ की
टनटनाती हुई इकलौती घण्टी
या राह चलते
मदमस्त ऊँटों की गाज़[१]
शाम होते ही घुलने लगती है

---

१. गर्जना

बूढ़े आकाश की आँख
आकर बैठ गये
अपने-अपने घोंसलों में
कमेड़ियाँ[1] और मोर
घुस गये झाड़ियों में
नेवले और ख़रगोश
शीत से डरकर
दुबक गया
समस्त चराचर
तरबूजों की लालची
फ़क़त लोमड़ियाँ
भटक रही हैं सूँघती
घास की ढेरियाँ !

---

१. फ़ाखता

चौमासा

लाया
हाँककर आषाढ़
आकाश की पूरब दिशा में
रड़कती दुधारू
काली-भँवर भैंसें
दुहते हैं धरती के बासन में
धारोधार दूध
फिरती है सहलाती
हर भैंस को
मालकिन बिजुरिया
न लग जाये नज़र
इस ख़ातिर
कर दिया टोना
इंद्रधनुष का
गलबंधन डालकर !

दिन

वक़्त खींचता है
अँधेरे के भैंसे से
चाँद का हल,
बोता है
आकाश के खेत में
तारों के बीज
तब पकती है
दिन की सुनहरी फसल !

भभूत

पाँव को नहीं
जब दिशाओं का ज्ञान
बेकार बात है
मंज़िल के लिए
मन को आतुर करना
कहाँ है तेरे पास
उगाने को सूरज !
इतना आसान नहीं है
अनंत आकाश का
क्षितिज बनना,
नहीं चाहिये
चमगादड़ की तरह
भागते अँधेरे को रास्ता
लेकिन परम सच तो यह है
लीक-लीक चलकर
बनेगी भभूत वही जोत
जो कि अपने अहम् को
शेष रहने तक जलायेगी !

जन्मदिन

बिखेर दी
रेत में
अमृत की
पचपन बूँदे
अब तो बस नमी
सूखी नहीं
कि काल
कर लेगा कलेवा !

गीतों की दीठ

अब भी पहचानता हूँ
पीड़ा का चेहरा
नहीं पड़ी मंद
मेरे गीतों की दृष्टि
अभी काबिज़ है शब्दों की
चुटकी में सत्य
मत पकड़ा मुझे
कलम की जगह शस्त्र,
अभी तक बिलकुल कच्चा है
तेरा 'भोगा हुआ यथार्थ'
थाली और खाट
है एकमात्र तेरी उपलब्धि,
ज़िन्दगी नहीं कोई रखैल
यही है सर्वोपरि तथ्य
भ्रमित हो गयी स्वाद के लिए
तेरी अध-वानरी चेतना
प्रतिष्ठित किये थे बड़े चिन्तन से पुरखों ने
मानवता के शाश्वत मूल्य
तू कर नयी सर्जना

उकेर मंज़िल की राह में
कुँआरे पदचिह्न,
कोई क्यों करेगा एतराज़ ?
मत काट
अपने स्वार्थ से प्रेरित
महती नाम के नादीदे
मत काट
दुधारू भैंस को
ताँत की ख़ातिर !

अनहद का अमृत

लेखक !
मत बना
अपनी क़लम को
भोगी रसिक की बाँसुरी
निर्लज्ज चितेरे की कूँची
यह तो है
माँ सरस्वती की
संजीवनी बूटी,
उजागर करती है आत्मा की जोत
मिटाती है जीवन का द्वन्द्व
तू पहचान इसकी क्षमता
सस्ती राग-रागनियों
और स्थूल बिम्बों में
मत उँड़ेल
इसकी नोक से झरता
अनहद का अमृत !

चेत

पेड़ों पर
चिड़ियाँ बहुतेरी
और पत्ते थोड़े
गाँव-गलियों में
समाते नहीं डंगर
खेत खुद भूखे हैं
निगल जाते हैं बीज
नदी नाले खुद प्यासे हैं
पी जाते हैं
बरसते बादल
धरती चीख़ रही है
उफन रहा है समंदर
और आकाश काँपने लगा है
शायद शिव व्यग्र हैं
सृष्टि के
प्रलय की ख़ातिर
बारम्बार फुफकारते हैं
आपाधापी के नाग
दहाड़ता है घमण्डी नंदी

उछालता है सींगों से धूल
पर माँ-पार्वती ने
अब भी नहीं छोड़ी आस
नहीं थमाये अभी तक
त्रिशूल और डमरू
टलती जा रही है होनी
आ भाई आदम !
अब तो चेत
तांडव की मुद्रा बने
इससे पहले ही चेत !
पकड़ ले सत्य की राह
रे सुन, अंतस् में बैठे
सुंदर की पुकार !

साँझ

इक साँझ
पीछे छूट गयी
दूसरी सामने है
घर से बाहर खदेड़ा सूरज बोला
मेरी ही धूप के
तालमेल से लगता है
रात को गरजेंगे बादल
बिजली चमकेगी
उठेंगे अंधड़
पास नहीं है कुछ भी
फ़क़त किरन की–
एक अकिंचन तीली,
दीपक जलाऊँ
या तारे सुलगाऊँ ?
इस उहापोह में
यह कैसी बीती ?
होनी या अनहोनी
किधर, कहाँ लूँ विश्राम ?
तब हृदय में दुबकी

आस बोली
मेरा गला मत घोंट
जीवित रहने दे मुझे
मेरी पहुँच में ही
तेरी मंज़िल है।

खेल

आकाश को पटकनी देकर
दबोच लें
वक़्त को बहलाकर
थाम लें
अभी नहीं जन्मे
ऐसे नक्षत्रधारी कवि और कथाकार
पानी और पवन
मिट्टी और अगन
सब चलते हैं
इन दोनों के इशारे पर
सब वहीं रुक जाते हैं
जहाँ वे रोकते हैं
करती हैं इन्हीं की परिक्रमा
छहों ऋतुएँ
ये ही फूलती और फलती हैं
फबती और गलती हैं
पड़ता है सृष्टि की रसोई में
इन्हीं का डाला हुआ नमक
इन दोनों का यह खेल
समस्त चराचर का मेल।

राम-नाम

सोने का पिंजरा
मखमल का खोल
रत्न कटोरे में
अनार और दाख
सिखाते हैं तोते को
बोल मिठ्ठू
राधेश्याम
ऐन सामने
गली में बैठे
भूखे सूरदास ने
त्याग दिये प्राण
रट-रटकर राम नाम।

दुपहरी

पसर गयी कगार पर
नहाकर
गाँव के तालाब में
जेठ की कुँआरी दुपहरी,
अकेली देखकर
छोरी को
करते हैं छेड़खानी चंचल चूहे
वह उकेरती है चील की छाया
वे भागकर
बिल में घुस जाते हैं।

निर्लज्ज द्वंद्व

लड़ रहा हूँ
अकेला
एक अदीठ युद्ध
शब्दों के चक्रव्यूह में
इस क्षण तक
बँधा नहीं
चेतना का बैरी 'मैं'
पोथियों के पन्नों में
बैठे हैं काला मुँह करके
मेरे पराजित विचार
मन की सीमा पर मुस्तैद
निर्लज्ज द्वद्व
हँसता है बगलें बजाकर।

Indian Institute of Advance Study
1160.19
17/11/04
SHIMLA

अल्ल सवेरे
फँरास पर बैठी लीलटाँस
अचानक ही उड़ गयी
आकाश की अनंत नीलिमा में–
जाग उठी कोई याद
कोई सपना,
ऊँची ही ऊँची
उड़ती गयी
पीछे छूट गया घोंसला

मोबी बच्चो !
अब वह
माँ नहीं
केवल मादा है।

(प्रस्तुत संग्रह से)

Library IIAS, Shimla
H 817.51 Se 75 L
00116019

ISBN 81-7201-753-7
मूल्य : 45 रुपये

आवरण : रणवीर सिंह विष्ट